षष्ठम अध्याय

उपसंहार

अध्याय 6

उपसंहार

इस प्रबन्ध में वैष्णव भक्ति सिद्धान्त के माधुर्य भाव का एक दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। ईश्वर के प्रति मधुर भावाश्रित भक्ति को प्रेमाभक्ति कहते है। शान्त, दारू, संचय, वात्सल्य एवं मधुर भावों में से किसी एक भाव का आश्रय करने पर ईश्वर से प्रेम सम्पर्क हो जाता है। परन्तु इन सभी भावों की अन्तिम परिणति मधुर रति में होती है। मधुर भाव में भक्त भगवान को अपना प्रियतम मानकर अपने को उसकी प्रेमिका के रूप मे आचरण करता है तथा प्रेमिका के रूप में ही ईश्वर के साथ प्रेम सम्बन्ध स्थापित करता हैं।

प्रेम या अनुराग का मार्ग भक्ति साधना में सरल तथा सुगम्य मार्ग है क्योंकि यह मार्ग जातिगत वैशम्य, कर्म काण्ड के विधि निषेध, योग की कलोरता अथवा ज्ञान साधना के वैचाकि अभिनिवेश से सर्वथा मुक्त है। इसका द्वार सबके लिए उन्मुक्त है। भक्ति के क्षेत्र में इसे ही रागात्मिका भक्ति कहते है, जो कि वैधी भक्ति से पूर्णतया भिन्न है, क्योंकि वैधी भक्ति में भक्त और भगवान में पर्याप्त दूरी बनी रहती है, जबकि रागात्मिका प्रेमाभक्ति में वह दूरी समाप्त हो जाती है तथा भक्त भगवान से पूर्ण सामीप्य की अनुभूति सदा किया करता हैं।

ईश्वर के लिए मधुर भावाश्रित भक्ति का मुख्य श्रोत ब्रज की गोपियॉ है। श्री कृष्ण की ब्रज लीला में अशिक्षित गोपियों का उनके प्रति अनन्य प्रेम स्पष्ट है। गोपिकाओं का यह प्यार शुद्ध तथा अहेतुकी था। गोपिकाओं को यह भी बोध नहीं था कि श्री कृष्ण भगवान हैं इस शुद्ध अभिन्न ताकि अहेतुकी प्रीति से निरक्षण गोप बालाओं को परम पद का अधिकार प्राप्त हुआ।

भागवत में वर्णित श्री कृष्ण की ब्रज लीला में मधुर भाव की जो अभिव्यक्ति गोपी प्रेम में परिलक्षित होती हैं उसी भाव की अवधारणा महा प्रभु चैतन्य को गोणीय वैष्णववाद में स्पष्ट है। यह तथ्य निर्विवाद है कि वर्तमान युग में माधुर्य भक्ति के व्याप्त प्रचार एवं लोक प्रियता का मुख्य श्रेय श्री चैतन्य को ही है। जिनकी साधना तथा जइवन मधुर रति के साधको के लिए सदा ही एक आदर्श एवं मापदण्ड बना रहेगा। प्राचीन आलवार भक्तों के गीतों में तथा भागवत पुराण के कुछ अंशों तक जो मधुर भाव सीमित पड़ा रहा तथा भक्ति साधना में जिसका प्रयोग उत्यन्त विरल था। उसी भाव को सर्वप्रथम गोणीय वैष्णव सम्प्रदाय में भगवत भक्ति के सर्वश्रेष्ठ साधन के रूप में स्वीकार कर जन साधारण के लिए सहज, सुगम बना दिया गया। मधुर भाव ही जो अभिव्यक्त भागवत वर्णित गोपी प्रेम में परिलक्षित होती हैं उसके अनुसार मधुर भाव की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं।

1– गोपियों का श्री कृष्ण के प्रति कान्ताभाव :

प्रत्येक गोपी श्री कृष्ण को अपना प्रियतम समझती थी। इसीलिए गोपियों में सदेव श्री कृष्ण मिलन की आतुरता बनी रहती है। गोपियों के इस प्रेम में पूर्वराग, मान, संयोग तथा वियोग की सभी दशायें दृष्टिगोचर होती है।

2. गोपिकाओं में मधुर भाव स्वकीया तथा परकीया दोनों ही रूपों में व्यक्त हुआ हैं कात्यान्वी ब्रत के अनुष्ठान में कुछ गोपियॉ स्वकीया भाव से अपने पति के रूप मे श्री कृष्ण को प्राप्त करना चाहती थी। दूसरी गोपियॉ अपने पति–पुत्र के होते हुए भी परकीया भाव से श्री कृष्ण से मिलना चाहती थी। भागवत वर्णित मधुर भाव स्वकीर्या एवं परकीया के मौलिक भाव पर आश्रित हैं।

3. श्री कृष्ण के प्रति गोपियों की मधुर रति शुद्ध तथा अहेतुकी है। श्री कृष्ण के रूप माधुर्य, वैधी वादन आदि से वे आकृष्ट होती थी। उनके ईश्वरत्व अथवा ऐश्वर्य से नहीं।

श्री कृष्ण के ऐश्वर्य को तो ब्रज की गोपियॉ सहन ही नहीं कर सकती थी।

4. गोपियों का मधुर भाव पूर्णतया काम, गन्धहीन था।

5. दिव्य मधुर भाव में सामाजिक विधि निषेधों अर्थात् लज्जा, कुछ, शील आदि की परवाह नहीं है। गोपिकाएँ सामाजिक विधि निषेध का पूर्ण परित्याग कर देती हैं।

6. मिलन की स्थिति में भी अतृप्ति बनी रहती हैं

7. यह माधुर्य भाव प्रति क्षण अनुभूपमान प्रियम समागम और प्रियतम् को भी नित्य नूतन बनाता रहता है।

8. गोपियों के मधुर भाव में प्रियतम् के दर्शन सुख में बाधक होने के कारण पलको का गिरना भी असह्य हो जाता हैं।

9. गोपी प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि असह्य दुःख स्वीकार करके भी जिस प्रकार अपने प्रियतम् सुखी हो वही चेष्टा निरन्तर बनी रहती है। इस दृष्टि से प्रियतम् की सन्तुष्टि के लिए अदर्शन या विरह ही काम्य है।

10. मधुर रस की उच्चतम् अभिव्यक्ति उस स्थिति में होती है, जब गोपियॉ पशु, पक्षी, लता, वृक्ष आदि में सर्वत्र प्रियतम् का सर्वत्र अनुभव करती है और इस जीवन में प्रियतम् से मिलना असम्भव समझकर यह कामना करती है कि शरीर के पंचत्व प्राप्त होने पर उसे जलांश प्रियतम् के धनार्थ जल मे तेजांश उनके दर्पण में आकांशांश उनके ऑगन के आकाश में क्षिति अंश उनके मार्ग की मिट्टी में और पवनांश उनके पंखे की हवा में मिल जाय।

भागवत के माधुर्यभक्ति के उक्त वैशिष्य वास्तव में किसी दार्शनिक अथवा सामप्रदायिक परिपेक्ष से व्युत्पन्न नही हैं यहॉ हमें यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि भागवत पुराण का प्रचलित यह वर्तमान रूप ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत

प्राचीन नहीं है। श्री कृष्ण की बाल्य लीला गोपी प्रेम की कथाएँ भागवत के रचना के पूर्व प्रचलित अवश्य रही होगी, परन्तु भागवत पुराण में उन कथाओं का जो प्रारूप उपलब्ध होता हैं उसमें तमिल वैष्णववाद का निश्चित प्रभाव परिलक्षित होता है। हमने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मधुर भावाश्रित भक्ति साधना का स्पष्टस्वरूप भागवत पुराण में ही उपलब्ध हैं यद्यपि मधुर भावाश्रित भक्ति साधना का मूल श्रोत यद्यपि सर्वप्रामि दक्षिण के आलवार सन्तों में ही दृष्टिगोचर होता है फिर भी भागवत वर्णित गोपी प्रेम ही मधुर भावाश्रित प्रेम ही मधुर भावाश्रित प्रेम साधना की पराकाष्ठा हैं इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भक्ति साधना में गोपी भाव का जन्म भी आलवारों से होता हैं किन्तु गोपी प्रेम का जो प्रत्यक्ष स्वरूप भागवत पुराण में उपलब्ध है, वह स्वरूप अन्यत्र संभव नहीं।

माधुर्य भावाश्रित भक्ति साधना को श्री चैतन्य ने अपने जीवन साधना तथा सैद्धान्तिक बुनियाद पर इतना लोकप्रिय बनाया, उसका आधार भागवत वर्णित गोपी प्रेम ही है। दार्शनिक दृष्टि से भागवतकार कृष्णस्तु भगवान स्वयं कह कर सगुण और निर्गुण के विरोध के समापन का प्रयास किया है। सगुण ईश्वर की लीलाएँ अनन्त में क्रीड़ा हैं। इस समन्वय परक दृष्टिकोण के आधार पर भागवतकार का प्रयोजन भक्ति का उत्कर्ष दिखाकर मनुष्य को उस ओर प्रवृत्त करना हैं चूँकि भागवतकार ज्ञान और भक्ति में तात्विक विभेद को स्वीकार नहीं करते तथा मधुर भावाश्रित भाव साधना की विवेचना के माध्यम से यह प्रमाणित कर देना चाहते हैं कि भक्ति की पराकाष्ठा ज्ञान है, तथा ज्ञान की पराकाष्ठा भक्ति है।

भागवत वर्णित गोपी प्रेम ही उत्कृष्टतम भक्ति है। जिसमें भी परम ज्ञान का समन्वय हैं मधुर भक्ति की विवेचना से यह भी प्रमाणित हो जाता हैं कि परम ज्ञान एवं पराभक्ति दोनों एक हैं क्योंकि दोनों ही अंतरंग भाव है। साथ ही इस प्रकार के भाव

है।, जिस भाव का विश्लेषण आधुनिक मनोविज्ञानि नहीं कर सकता, क्योंकि मनोविज्ञान जिस मानसिक अवस्था की विवेचना कर सकने में सक्षम है, वपह मधुरभावाश्रित तात्विक लीला भाव की विवेचना नहीं कर सकता। यह तात्विक लीला भाव मानसिक अवस्था से पर्याप्त पृथक हैं यदि मनोविज्ञान का सम्बन्ध केवल मानसिकता से ही है तो फिर अधिमानसिक भावानुभूतियों का तथावनुरूप आचरण का विश्लेषण करना मनोविज्ञान के द्वारा सम्भव नहीं हैं । भागवत में जिस गोपी भाव को विवेचित किया गया है। वही गीता का अनन्यता भाव है।

भागवतकार ने मधुर भक्ति की विवेचना में गोपियों का पूर्ण निष्कामता को प्रमाणित किया है। यह निष्कामता ही भाव की उत्कृष्टत है, गोपियॉ कृष्ण से कुछ नहीं चाहती, केवल कृष्ण को चाहती है। इसलिए गोपियॉ की प्रीतति अहेतु की की प्रीति है जिसे कि दार्शनिक दृष्टि से साध्य भक्ति कहा जा सकता है। यह साध्य भक्ति ही पूर्णतया प्रमाभक्ति है। वास्तव में प्रेम लक्षणा भक्ति ही भागवत का विधेय है। जिसका मानवीय मनोविज्ञान के धरातल पर विवेचन हुआ। इसीलिए वह विवेचन शास्वत एवं सार्वभौम है। भागवत की श्रेष्ठता एवं वैशिष्ट्य का आधार गोपी भाव की विवेचना ही हैं भागवत वर्णित गोपी भाव ही मधुर भक्ति का श्रेष्ठतम उदाहरण है तथा भक्ति का श्रेष्ठतम स्वरूप है।

प्रस्तुत शोध में मनोविज्ञान विश्लेषण के आधार पर ही यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि मधुर भावाश्रित भाव साधना पूर्ण योगमार्गी साधना है। क्योंकि इस प्रकार के भक्ति भाव में चित्त वृत्तियों का विरोध स्वाभाविक हैं परणिामस्वरूप चेतना के स्वरूप का पूर्ण दिव्यीकरण सम्मनित हो जाता है। दिव्यता की यह अवस्था मनोविज्ञान अथवा परामनोविज्ञान के विवेचवना का विषय नहीं है। इस प्रकार की अनभूति को श्री अरविन्द की भाषा में अति मानसिक अनुभूति तथा गीता की

भाषा में स्थित प्रज्ञ की अपनुभूति कह सकते है। इस प्रकार की भाव साधना द्वारा प्राप्त अवस्था को ही श्री राम कृष्ण परमहंस ने विज्ञानी की अवस्थिा कहा हैं । चूँकि विज्ञानी ज्ञान और अज्ञान दोनों से परे होता है। इसलिए वह मनोविज्ञान एवं परामनोविज्ञान के व्याख्या का विषय नहीं है।

मधुर भक्ति में स्वीकृत ज्ञान वह उच्चतर ज्ञान है, जो कि भक्ति कि भ्ळाक्ति की पराकाष्ठा द्वारा प्राप्त है जिसमें भक्त के समस्त मानसिक विभेद समाप्त हो जाते है। इस प्रकार की मानसिक अनुभूतियों को मनोवैज्ञानिक केवल मानसिक रोग ही कह सकता हैं जबकि इस दिव्य महाभाव को मानसिक रोग कहना सत्सम्बन्धी अज्ञान्ता का द्योतक है। दार्शनिक दृष्टि से मधुर भक्ति सिद्धान्त में स्वीकृत गोपी प्रेम उस निर्विकार चेतना का परिचायक है, जिसे सामान्य चेतना न मानकर दिव्य चेतना के रूप में स्वीकार कर लेना ही दार्शनिक दृष्टि से समीचीन है।

प्रस्तुत शोध में मधुर भक्ति के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा परामनोवैज्ञानिक विश्लेषण का आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि गोपी प्रेम जैसे उत्कृष्ट भाव का अध्ययन सामान्य मनोविज्ञान नहीं कर सकता है।

मधुर भाव में स्वीकृत गोपी भाव हव उत्कृष्ट भाव है जिसे अरविन्द की भाषा में प्रज्ञान पुरूष कहा जा सकता हैं श्री अरविन्द ने प्रज्ञान पुरूष के लिए नॉस्टिक वींग [1] कहा है। इसाई धर्मशास्त्र में रहस्यानुभूति को नॉसिस कहते है। तथा प्राचीन ईसाई समाज में नास्टिक वे कहलाते थे जो परमतत्व का ज्ञान तथा रहस्यानुभूति की दावा किया करते थे। अति मानसिक स्तर पर मानव जाति को नास्टिक रेस कहने का श्री अरविछन का सम्भवतया यही उद्देय था। श्री अरविन्द के नास्टिंग वींग के लिए प्रज्ञान पुरूष शब्द ही अधिक उपयुक्त है। गोपियों की अवस्था श्री अरविन्द द्वारा

---

1. दिव्य जीवन श्री अरविन्द पृ0 274

स्वीकृत प्रज्ञान पुरूष की अवस्था से पूर्ण समानता रखती है क्योंकि प्रज्ञान पुरूष के सम्बन्ध में श्री अरविन्द यह स्वीकार करते है कि प्रज्ञान पुरूष का शरीर भी भौतिक नियमों के द्वारा परिचालित नहीं होता। जहॉ तक गोपियों का प्रश्न है वैज्ञानिक व्याख्या से यह प्रमाणित हो जाता है कि गोपीयों के शरीर एवं मन का पूर्ण आध्यात्मीकरण हो चुका है। परिणमास्वरूप उनका शरीर भी भौतिक निलयामें से परिचालित न होकर आध्यात्मिक नियामें से परिचालित होता रहा। गोपियॉ अपने शरीर को ही याद नहीं कर पाती थी वे कृष्णमयीर होकर स्वयं में कृष्णस्वरूपिणी बन गयी थी गोपियों की यह अवस्था आध्यात्मिक अवस्था की परकाष्ठा थी। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के पश्चात् चूॅकि कुछ भी प्राप्त करने की आकांक्षा नही रह जाती। इसलिए गोपियों वाह्य लौकिक जगत की समस्त अपेक्षाओं से पूर्णतया विरत थी। इसी प्रकार के साधक के लिए श्री अरविन्द ने अतिमानसिक परिवर्तन के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। गोपियों की इस अवस्था को जीवन मुक्त भी नहीं कहा जा सकता। यद्यपि गोपियों ने जीवन मुक्त के समान देह साधारण को किया है। किन्तु उनका यह देह धारण प्रारब्ध के कारण नहीं कहा जा सकता।

गोपियों के महाभाव को गीता वर्णित स्थित प्रज्ञा के भाव से तुलना करने का भी प्रस्तुत शोध में प्रयास किया गया है। स्थितप्रज्ञ की समस्त इन्द्रियॉ आत्मा से भी रमण करती हैं अर्थात् जब इन्द्रियॉ अपने विषयों से हट कर आत्म केन्द्रित हो जाती है तो वहीं अवस्था स्थित प्रज्ञा की अवस्था है। परिणामस्वरूप वाह्य विकार इस अवस्था में चित्त को न तो प्रभावित कर पाते है और न तो विकृत ही। यह चेतना के दिव्यीकरण की अवस्था है। चेतना की यह अवस्था वस्तुतः अतिमानस से साम्य रखती है। यद्यपि श्री अरविन्द जिस अतिमानस को स्वीकार करते है। वह अतिमानस सच्चिदानन्द की तुलना में किसी भी माने में हीन या न्यून नहीं है। इसलिए स्थित प्रज्ञ

एवं अतिमानसिक मानव के सन्दर्भ में गोपी भाव की विवेचना भी आवश्यक हो जाती है। प्रस्तुत शोध में गोपीभाव को अतिमानसिक मानव के रूप में विवेचित करने का प्रयास किया गया है।

गीता में चूँकि आत्मा में आत्मा से सन्तुष्ट रहने की अवस्था को स्थित प्रज्ञ कहा गया है। अतिमानसिक मानव के स्वरूप की विवेचना में भी श्री अरविन्द ने यह प्रमाणित किया है कि अतिमानसिक मनुष्य के लिए सभी उद्देश्य अपनी आत्मा की ओर निर्देशित होगें। उसके लिए यह वर्तमान जगत् आत्मा में आत्मा के लिए आत्मी की हीं प्राप्ति हैं । दोनों ही विचारधाराओं में बौद्धिकता से परे अतिचेतना के लिए आत्म चेतना को ही प्रमाणित किया गया है, तथा यह स्वीकार किया गया है कि यह आत्म चेतना ही चैतना की पराकाष्ठा है, क्योंकि यही चेतना की प्राकृत अवस्था है। मानसिक तथा बौद्धिक अवस्था को श्री कृष्ण एवं श्री अरविन्द दोनों ने ही अप्राकृत अवस्था की संज्ञा दी है। इसलिए जहॉ श्री कृष्ण ने पूर्ण इन्द्रिय संयम के द्वारा स्थित प्रज्ञा को प्रमाणित करने का प्रयास किया है वहीं श्री अरविन्द ने अतिमानसिक चैतन्य की प्राप्ति को ही अतिमानसिक मानव की संज्ञा दी है।

श्री अरविन्द अतिमानसिक मानव के लिए जिस अतिमानसिक अवस्था को स्वीकार करते है। कि वह अतिमानसिक अवस्था ऐसी अवस्था है जिसकी विवेचना वर्तमान मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान के द्वारा सम्भव नहीं हो जाती। क्योंकि अतिमानसिक अवथा अतिचेतना है। यह अतिचेतना बौद्धिक विवेचना से परे हैं चूँकि मनोविज्ञान का सम्बन्ध बौद्धिकता से है, इसलिए अतिमानसिक चेतना की विवेचना परामनोविज्ञान के द्वरा सम्भव नहीं हो पाती। यदि गोपीभाव को अतिमानसिक चेतना के रूप में प्रमाणिता किया जा सकता है तो निश्चय ही गोपियों की मनोदशा का मनोवैज्ञानिक विवेचन सम्भव नहीं हा पाता। सामान्य मनोविज्ञान अथवा परामनोविज्ञान की व्याख्या का सम्बन्ध

लौकिकता से सम्बन्धित चित्त व्यक्तियों से है जबकि भाव तथा महाभाव की अवस्था मे चित्त वृत्तियों का पूर्ण दिव्यीकरण हो जाता है। लौकिक जगत में स्त्री, पुरूष का सम्बन्ध यदि निकृष्ट माना जाता है तो आध्यात्मिक जगत में इस सम्बन्ध की स्थापना श्रेष्ठतम भक्ति मार्ग है। इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टिकोण यदि लौकिक सम्बन्धों के विपरीत आख्या पर आधारित है तो फिर लौकिक विज्ञान के महाभाव के इस स्वरूप की अवस्था का विवेचन तथा मूल्यांकन सम्भव नहीं हो पाता।

गोपियों की मनोदशा के विवेचन से यह प्रमाणित हो जाता है कि गोपियों का चित्त श्री कृष्ण में ही समाहित है । स्वयं गोपियों ने श्री कृष्ण को भागवत में चित्त चोर भी इसीलिए कहा है अतः गोपियों की मनोवृत्ति में चित्त वृत्तियों के विकारें के उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता। इस प्रकार गोपियों चैतन्य वह निर्विकार चैतन्य है। जिसमें कि चेतना के पूर्ण प्रकाश की अवधारणा को स्वीकार किया जा सकता हैं गोपियॉ आप्तकामा है, पूर्ण कामा है, इस कथन का तात्पर्य यह कि गोपियों के मनस में लौकिक जगत की कोई भी कामना प्रभावी नहीं है। तभी तो गोपी भाव को गीता वर्णित स्थित प्रज्ञ के रूप में विवेचित करने का प्रयास किया गया हैं साधना में स्थितप्रज्ञ की अवस्था में आत्मा, आत्मा से ही सन्तुष्ट होती है तो उसे ही स्थितप्रज्ञ कहा गया है। गोपियों की आत्माएँ भी उनके आत्मस्वरूप श्री कृष्ण से ही सन्तुष्ट होती है। इसलिए गोपीभाव को स्थित प्रज्ञा के रूप में विवेचित कर देना भी कभी भी उपयुक्त प्रतीत होता है। किन्तु गोपीभाव केवल स्थितप्रज्ञ का भाव ही नहीं है अपितु उससे भी श्रेष्टतः भाव हैं उच्चतर भाव है। यही कारण है कि गोपीभाव को भक्ति शास्त्र में उत्कृष्टतम् भाव के रूप में प्रमाणित किया जाता हैं। इस भाव की तुलना में अन्य कोई भाव समानता नहीं रख पाता अब तक इतिहास में माधुर्य भावाश्रित गापियों का महाभाव ही वह श्रेष्ठतम् भाव है। जिसका सीधा सम्बन्ध अतिबौद्धिकता से है, चूँकि

वैचारिक दृष्टि से अतिबौद्धिकता वर्णनातीत है। इसलिए महाभाव भी वर्णनातीत ही होगा। यद्यपि दार्शनिक दृष्टि से प्रस्तुत शोध में अवस्था क्रम के अनुसार इस महाभाव को विवेचित करने का प्रयास किया गया है किन्तु यह विवेचना ही पूर्ण उपयुक्त विवेचना है। ऐसा नहीं कहा जा सकता, गोपियॉ महाभावस्वरूपिणी है। उनका शरीर, मन आचरण सभी कुछ महाभाव से आप्लावित हैं तभी तो गोपियॉ वाह्य जगत में परवाह किये बिना पूर्ण रूप से श्री कृष्ण की रूप माधुरी मे ही समर्पित है। भागवतकार ने दशम स्कन्ध में जिस महारास की विवेचना की है। वह महारास जीवात्मा एवं परमात्मा का पूर्ण मिलन है। परमात्मा का अपनी श्री आन्तरिक शक्ति से क्रीड़ा है, लीला है। इस लीला को भागवतकार ने गोपीभाव में रास लीला के रूप में विवेचित किया है। वस्तुतः गोपियों की मनोदशा की विवेचना से यह प्रमाणित हो जाता हैं कि वे कृष्ण की है तथा कृष्ण उनके अपने हैं। इस कथन से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि गोपियों का जितना प्रेम श्री कृष्ण से हैं। श्री कृष्ण का भी उससे कम प्रेम गोपियों से नहीं है। इस अन्योन्याश्रित प्रेम को गोपीभाव में ही स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार के ईश्वरीय प्रेम का अन्यत्र उदाहरण सम्भव नहीं हो पाता।

मधुर भाव का परा मनोवैज्ञानिक विवेचन दार्शनिक एवं धार्मिक दोनों ही दृष्टियों से आवश्यक हैं क्योकि भारतीय चिन्तकों के लिए यह एक महत्वपूर्ण दार्शनिक प्रश्न था कि क्या मधुर भाव जैसे उत्कृष्ट भाव के लक्षण एवं स्वरूप का ज्ञान परामनोविज्ञान द्वारा सम्भव है अथवा नहीं। चूँकि दार्शनिक दृष्टि से मधुर भाव जैसी उत्कृष्ट भाव साधना को चिन्तन की पराकाष्ठा के रूप में स्वीकार किया जाता है फिर भी इस भाव साधना को दार्शनिक दृष्टि से अज्ञेय मान लेना उपयुक्त नहीं है। इसीलिए प्रस्तुत शोध में मधुर भाव के लक्षण एवं स्वरूप को विवेचित करने का प्रयास किया गया है। भागवत वर्णित भक्ति के विभिन्न भावों में मधुर भाव उत्कष्टतम् भाव है, इसमें

सन्देह नहीं। किन्तु इस प्रकार के भाव साधना की विवेचना सहज एवं सरल नहीं, वस्तुतः गोपी प्रेम के यथार्थ अनुभूति की व्याख्या की वही कर सकता है जो उस कोटि का साधक हो, क्योंकि गोपी प्रेम का भाव चेतना की उस अति बौद्धिक अवस्था को प्राप्त करता है, जिसकी व्याख्या सामान्य बौद्धिक चेतना के द्वारा सम्भव नहीं है। फिर भी विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर प्रस्तुत शोध में मधुर भाव जैसे उत्कृष्टतम् भाव को शास्त्र प्रमाण के आधार पर दार्शनिक दृष्टि से विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। दार्शनिक दृष्टि से मनोवैज्ञानिक व्याख्या पर आधारित यह प्रयास एक अभिनव प्रयास है, इसमें सन्देह नहीं।